ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print): 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed Journal)

Website: www.ijirset.com

Vol. 6, Issue 7, July 2017

वैदिक साहित्य में पर्यावरण की अवधारणा

Dr. Saroj Meena

Associate Professor, Dept. of Sanskrit, B.S.R. Government Arts College, Alwar, Rajasthan , India

सार

पर्यावरण एक व्यापक शब्द है। यह उन संपूर्ण शक्तियों, परिस्थितियों एवं वस्तुओं का योग है, जो मानव जगत को परावृत्त करती हैं तथा उनके क्रियाकलापों को अनुशासित करती हैं। हमारे चारों ओर जो विराट प्राकृतिक परिवेश व्याप्त है, उसे ही हम पर्यावरण कहते हैं। परस्परावलंबी संबंध का नाम पर्यावरण है। हमारे चारों ओर जो भी वस्तुएं परिस्थितियां एवं शक्तियां विद्यमान हैं, वे सब हमारे क्रियाकलापों को प्रभावित करती हैं और उसके लिए एक दायरा सुनिश्चित करती हैं। इसी दायरे को हम पर्यावरण कहते हैं। यह दायरा व्यक्ति, गांव, नगर, प्रदेश, महाद्वीप, विश्व अथवा संपूर्ण सौरमंडल या ब्रह्मांड हो सकता है। इसीलिए वेदकालीन मनीषियों ने द्युलोक से लेकर व्यक्ति तक, समस्त परिवेश के लिए शांति की प्रार्थना की है। शुक्ल यजुर्वेद में ऋषि प्रार्थना करता है, 'द्यौः शांतिरंतरिक्षं...' (शुक्ल यजुर्वेद, 36/17)। इसलिए वैदिक काल से आज तक चिंतकों और मनीषियों द्वारा समय-समय पर पर्यावरण के प्रति अपनी चिंता को अभिव्यक्त कर मानव –जाति को सचेष्ट करने के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह किया गया है।

परिचय

इस प्रकार द्युलोक से लेकर पृथ्वी के सभी जैविक और अजैविक घटक संतुलन की अवस्था में रहें, अदृश्य आकाश (द्युलोक), नक्षत्रयुक्त दृश्य आकाश (अंतरिक्ष), पृथ्वी एवं उसके सभी घटक-जल, औषधियां, वनस्पतियां, संपूर्ण संसाधन (देव) एवं ज्ञान-संतुलन की अवस्था में रहें, तभी व्यक्ति और विश्व, शांत एवं संतुलन में रह सकता है। प्रकृति ने हमें जो कुछ भी परिलक्षित होता है, सभी सम्मिलित रूप में पर्यावरण की रचना करते हैं। जैसे-जल, वायु, मृदा, पादप और प्राणी आदि। अर्थात् जीवों की अनुक्रियाओं को प्रभावित करने वाली समस्त भौतिक और जीवीय परिस्थितियों का योग पर्यावरण है। इसलिए विद्वानों का मत है कि प्रकृति ही मानव का पर्यावरण है और यही उसके संसाधनों का भंडार है।[1,2]

वैदिक ऋषियों ने उन समस्त उपकारक तत्वों को देव कहकर उनके महत्व को प्रतिपादित तो किया ही है, साथ ही मनुष्य के जीवन में उनके पर्यावरणीय महत्व को भी भली-भांति स्वीकार किया है। इन देवताओं के लिए मनुष्य का जीवन ऋणी हो गया और शास्त्रीय कल्पनाओं ने मनुष्य को पितृऋण और ऋषिऋण के साथ-साथ देवऋण से भी उन्मुक्त होने की ओर संकेत किया है। वह अपने कर्तव्य में देवऋण से मुक्त होने के लिए भी कर्तव्य करें। ऋषियों ने उसके लिए यह मर्यादा स्थापित की है। पर्यावरण को संतुलित रखने के लिए जिन देवताओं की महत्वपूर्ण भूमिका है उनमें – सूर्य, वायु, वरुण (जल) एवं अग्नि देवताओं से रक्षा की कामना की गई है। ऋग्वेद (1/158/1, 7/35/11) तथा अथर्ववेद (10/9/12) में दिव्य, पार्थिव और जलीय देवों से कल्याण की कामना स्पष्ट रूप से उल्लिखित है। आज पर्यावरण शब्द जिस अर्थ में प्रयुक्त हो रहा है, अब से तीन-चार दशक पूर्व उसका ऐसा कोई पारिभाषिक अर्थ नहीं था। प्राचीन कोशों में और यहां तक कि संस्कृत हिंदी कोशों में भी यह शब्द उपलब्ध नहीं होता। उसके पीछे मूल कारण यही है कि यह शब्द उस समय तक किसी पारिभाषिक रूप से प्रचलित नहीं हो पाया था। अतएव प्राचीन कोशकारों ने इसका कोई विशेष अर्थ प्रस्तुत नहीं किया। पर्यावरण शब्द की उत्पत्ति, परि-उपसर्ग के साथ आवरण शब्द की संधि से होती है। इसके साथ ही आङ्पूर्वक वरण शब्द का प्रयोग भी संस्कृत शब्दार्थ-कौस्तुभ ग्रंथ में हमें प्राप्त होता है, जिसका अर्थ है, 'ढकना, छिपाना, घेरना, ढक्कन, पर्दा, घेरा, चारदीवारी, वस्त्र, कपड़ा और ढाल (वही, पृ. 200)। इसी ग्रंथ में संस्कृत के उपसर्ग 'परि' का अर्थ-सर्वतोभाव, अच्छी तरह, चारों ओर तथा आच्छादन आदि के रूप में मिलता है और 'आङ्' भी संस्कृत का एक उपसर्ग है, जिसका अर्थ, 'समीप, सम्मुख और चारों ओर से होता है (वही, वृ. 170)। वरण शब्द संस्कृत के 'वृ' धातु से बना है, जिसका अर्थ, 'छिपना, चुनना, ढकना, लपेटना, घेरना, बचाना आदि है (वही, पृ. 1056)। इसी प्रकार पर्यावरण – परि+आवरण से बने शब्द का अर्थ, 'चारों ओर से ढंकना, चारों ओर से घेरना या चारों ओर का घेरा' होगा। अतएव वैज्ञानिक कोशकारों ने इसका अर्थ, 'पास पड़ोस की परिस्थितियां और उनका प्रभाव' के रूप में माना है।[3,4]

ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print): 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed Journal)

Website: www.ijirset.com

Vol. 6, Issue 7, July 2017

सर्वप्रथम डॉ. रघुवीर ने तकनीकी शब्द कोष निर्माण के समय 'इन्वायरमेंट' (फ्रेंच भौतिक शब्द) के लिए 'पर्यावरण' शब्द का प्रयोग किया है। वे ही इसके प्रथम 'शब्द प्रयोक्ता है (कंप्रिहेंसिव इंग्लिश-हिंदी डिक्शनरी, डॉ. रघुवीर, पृ. 589)। वास्तव में पर्यावरण या इन्वायरमेंट शब्द अत्यधिक प्राचीन शब्द नहीं है। जर्मन जीव वैज्ञानिक अर्नेस्ट हीकल द्वारा 'इकॉलाजी' शब्द का प्रयोग सन् 1869 में किया गया, जो ग्रीक भाषा के ओइकोस (गृह या वासस्थान) शब्द से उद्धृत है। यही शब्द पारिस्थितिकी के अंग्रेजी पर्याय के रूप में इन्वायरमेंट शब्द से प्रचलित हुआ है। (पर्यावरण तथा प्रदूषण, अरुण रघुवंशी, पृष्ठ 41)। इन्वायरमेंट शब्द का प्रयोग, ऐसी क्रिया जो घेरने के भाव को सूचित करे, के संदर्भ में किया जाता है। विभिन्न कोशों में इसके विभिन्न अर्थ दिए गए हैं। जैसे-वातावरण, उपाधि, परिसर, परिस्थिति, प्रभाव, प्रतिवेश, परिवर्त, तथा वायुमंडल, वातावरण और परिवेश, अड़ोस-पड़ोस, इर्द-गिर्द, आस-पास की वस्तुएं एवं पर्यावरण आदि।"द्यौ: शान्तिरन्तरिक्षं शान्ति: पृथिवी शान्ति राप: शान्ति रौषधय: शान्ति।[5,6]

वनस्पतय: शान्तिर्विश्वेदेवा शान्तिर्ब्रह्मं शान्ति: सर्वशान्तिदेव शान्ति: सामा शान्तिरेधि।२।" – यजुर्वेदः(वैदिक शान्ति पाठ)

भारतीय संस्कृति व चिन्तन में पर्यावरण का वह महत्व है जो मानवीय शरीर में आत्मा का होता है। प्रकृति ने ही भारतीय संस्कृति को नया आयाम दिया है। चूँकि संस्कृति के सरोकार माने जाने वाले सभी धार्मिक व लौकिक पर्व प्रकृति से जुड़े हुए है।वैदिक काल से उत्तर वैदिक काल तक प्रकृति के महत्व को देखें तो स्पष्ट होता है कि तब मूर्तिपूजा का महत्व नहीं था।वैदिक कालीन मानव प्रकृति को जीवनदात्री समझता था। तथा उसके सभी घटकों जैसे – अग्नि, वायु व जल इत्यादि को सुरसम्य मानकर पूजता था। क्योंकि वह इसके हितसाधन का माध्यम बन चुकी थी। कृषि से लेकर सभी जीवकोपार्जन की सामग्री व वस्तुओं को वह प्रकृति से प्राप्त करता था। इसका तात्पर्य यह नहीं कि वैदिक कालीन मानव स्वार्थता से लिप्त था। अपितु उसका उद्देश्य पर्यावरण संरक्षण भी होता था। जब वैदिक कालीन समाज पर्वों व शुभ अवसरों पर प्रकृति का पूजन करता था। तो इससे प्रकृति प्रेम का भाव स्फुटित होता था। यह भाव ही पर्यावरण संरक्षण का बुनियादी आधार बनता था।[7,8]

अनादिकाल से पर्यावरण संरक्षण का भाव भारतीय चिन्तन के केन्द्र में रहा है। चाहे वह पौराणिक हो या मध्यकाल हो या आधुनिक काल।बल्कि पौराणिक काल में हमें यह भी देखनें को मिलता है कि भारतीय वैदिक साहित्य में कुछ पुराण प्राकृतिक घटकों जैसे – अग्नि, वायु व वरूण इत्यादि के नाम पर रखे गये हैं। जिनका उद्देश्य अग्नि, वायु व वरुण का उल्लेख करना ही नहीं बल्कि उसके महत्व को रेखांकित करते हुए घटक की पवित्रता सर्व स्थापित करना। ताकि समाज पर्यावरण संरक्षण को धर्म की आज्ञा मानें। और इसमें अपने योगदान को ईश्वरीय सेवा के समान मानें।[9,10]

पर्यावरण को संरक्षित करने के लिए यह जानना भी आवश्यक है कि पर्यावरण के निर्माणकारी समस्त तत्वों की सृष्टि किस क्रम में और किस प्रकार हुई और उसके कारक तत्व कौन से हैं, तभी पर्यावरण के समस्त रहस्यों को समझा जा सकता है। वैदिक ऋषियों ने ही सर्वप्रथम पर्यावरण पर चिंतन करते हुए, सृष्टि को प्रारंभिक अवस्था में जिस रूप में देखा, उसका वर्णन ऋग्वेद की ऋचाओं 'नासदासीत्रो सदासीत्तदानी…' (ऋग्वेद, 10/129, 1-7) में उपलब्ध होता है। जहां ऋषि कहते हैं कि सृष्टि के आरंभ में न सत् था न असत् फिर ब्राह्मण ग्रंथों (पृ. 158) में भी पुनः प्रश्न उठाया गया कि कौन जानता है यह सब? और कौन उसका वर्णन ही कर सकता है? किंतु इसके सम्पूर्ण समाधान के लिए ऋग्वेद संहिता में मंत्र है, 'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे…' (ऋग्वेद, 10/121/1) जिसमें सृष्टि के विकास-क्रम को बताया गया है कि सर्वप्रथम जीवों का स्वामीभूत हिरण्यगर्भ अस्तित्व में आया और उसी से सृष्टि का अविच्छिन्न विकास हुआ आदि-आदि।विज्ञान के अनुसार प्रकृति सदैव तीन रूपों में विद्यमान रहती है-कण, प्रतिकण एवं विकिरण। चाहे वह सृष्टि उत्पत्ति का समय हो या अन्य कोई समय। वैदिक सिद्धांत के अनुसार प्रकृति में मूल तीन वर्ग, 'त्रयः कृण्वति भुवनस्य रेत' (ऋग्वेद, 7/33/7) विद्यमान हैं। ये हैं वरुण, मित्र और अर्यमा। इनकी संयुक्त सत्ता को अदिति कहा गया है, जो अनादि एवं अखंड सत्ता है। व्यक्तिगत रूप से ये आदित्य कहलाते हैं। ये अनादि शाश्वत सत्ता के अंगभूत हैं। अर्यमा उदासीन कण है, जो विज्ञान की विकिरण के फोटांस के अनुसार है। वरुण और मित्र प्रकृति का द्रव्य भाग बनाते हैं तथा विज्ञान के कण-प्रतिकण का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा वे विपरीत आवेश (चार्ज वहन करते हैं। वैदिक अवधारणाओं के अनुसार सृष्टिकाल से दृश्य जगत तक भौतिक पदार्थ पांच भारतीय वैदिक व पौराणिक साहित्य – चिन्तन में प्राकृतिक घटकों से कल्याण की अभिलाषा को स्वस्ति कहा गया है। इस पर आचार्य सायण एवं नैरुक्त विचार है कि अप्राप्य वस्तु की प्राप्ति योग है एवं प्राप्ति का संरक्षण क्षेम है (ऋग्वेद, 5/51/11)। अतएव सहज-सुलभ व सरल प्राकृतिक घटकों का सुरक्षित रहना स्वस्ति है। इस प्रकार पर्यावरण को संरक्षित रखने की उदात्त भावनाएं हमें अनेक स्थलों पर देखने को मिलती हैं (ऋग्वेद, 5/51/11, 5/51/13, 5/51/14 तथा 10/7/1)।

ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print): 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed Journal)

Website: www.ijirset.com

Vol. 6, Issue 7, July 2017

प्राचीन वैदिक ऋषियों व विद्वानों ने उन समस्त पर्यावरणीय उपकारक तत्वों को देवसम्य बताकर उनके महात्म्य को अभिव्यिक्त तो किया ही है, साथ ही साथ मानवीय जीवन में उनके पर्यावरणीय महत्व को भी स्वीकार किया है। इन देवताओं के लिए मनुष्य का जीवन ऋणी हो गया और वैदिक व शास्त्रीय परिकल्पनाओं व अवधारणाओं ने मानव को पितृऋण और ऋषिऋण के साथ-साथ देवऋण से भी उन्मुक्त होने की ओर संकेत किया है। वह देवऋण से मुक्त होने के लिए भी कर्तव्य करें। ऋषियों ने उसके लिए यह मर्यादा व सीमाएं स्थापित की है। पर्यावरण को संतुलित रखने के लिए जिन देवताओं की महत्वपूर्ण भूमिका है उनमें – सूर्य, वायु, वरुण (जल) एवं अग्नि देवताओं से रक्षा की कामना की गई है। ऋग्वेद (1/158/1, 7/35/11) तथा अथर्ववेद (10/9/12) में दिव्य, पार्थिव और जलीय देवों से कल्याण व मंगल की कामेच्छा स्पष्ट रूप से उल्लिखित है।[11,12]

आधुनिक चिंतन में पर्यावरण के दो भेदों का ही वर्णन मिलता है। वे हैं-

1. भौतिक या प्राकृतिक पर्यावरण-इसके अंतर्गत वे तत्व सम्मिलित होते हैं, जो जैवमंडल का निर्माण करते हैं।
2. सांस्कृतिक या मानवकत पर्यावरण इसमें आर्थिक क्रियाएं, धर्म अधिवास, आवासीय दशाएं एवं राजनीतिक परिस्थितियां आदि सम्मिलित हैं। इस प्रकार यह तथ्य वैदिक और आधुनिक चिंतन से स्वयं स्पष्ट होता है कि प्राणि-जगत् को प्रभावित करने वाले पर्यावरणीय तत्व 'देव' केवल पार्थिव ही नहीं है, अपितु उनका स्थान अंतरिक्ष और द्युलोक भी है। वैदिक ऋषियों ने उन सभी से प्राणियों की मंगल-कामना एवं सुरक्षा चाही है।

पर्यावरण को जानने के लिए अब यह जानना भी आवश्यक है कि पर्यावरण का निर्माण करने वाले समस्त तत्वों की सृष्टि किस क्रम में और किस प्रकार हुई और उसके कारक तत्व कौन से हैं, तभी पर्यावरण के समस्त रहस्यों से आवरण दूर किया जा सकता है। वैदिक ऋषियों ने ही सर्वप्रथम पर्यावरण पर चिंतन-मनन करते हुए, सृष्टि को प्रारंभिक अवस्था में जिस रूप में देखा, उसका वर्णन ऋग्वेद की ऋचाओं 'नासदासीत्रो सदासीत्तदानी...' (ऋग्वेद, 10/129, 1-7) में उपलब्ध होता है। जहां ऋषि कहते हैं कि सृष्टि के आरंभ में न सत् था न असत् फिर ब्राह्मण ग्रंथों (पृ. 158) में भी पुनः शंका उठाई गई कि कौन जानता है यह सब? और कौन उसका वर्णन ही कर सकता है? किंतु इसके समाधान के लिए ऋग्वेद संहिता में मंत्र है, 'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे...' (ऋग्वेद, 10/121/1) जिसमें सृष्टि के विकास-क्रम को बताया गया है कि सर्वप्रथम जीवों का स्वामीभूत हिरण्यगर्भ अस्तित्व में आया और उसी से सृष्टि का अविच्छिन्न विकास हुआ आदि-आदि।विज्ञान के अनुसार प्रकृति सदैव तीन रूपों में विद्यमान रहती है-कण, प्रतिकण एवं विकिरण। चाहे वह सृष्टि उत्पत्ति का समय हो या अन्य कोई समय। वैदिक सिद्धांत के अनुसार प्रकृति में मूल तीन वर्ग, 'त्रयः कृण्वति भुवनस्य रेत' (ऋग्वेद, 7/33/7) विद्यमान हैं। ये हैं वरुण, मित्र और अर्यमा। इनकी संयुक्त सत्ता को अदिति कहा गया है, जो अनादि एवं अखंड सत्ता है। व्यक्तिगत रूप से ये आदित्य कहलाते हैं। ये अनादि शाश्वत सत्ता के अंगभूत हैं। अर्यमा उदासीन कण है, जो विज्ञान की विकिरण के फोटांस के अनुरूप है। वरुण और मित्र प्रकृति का द्रव्य भाग बनाते हैं तथा विज्ञान के कण-प्रतिकण का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा वे विपरीत आवेश (चार्ज वहन करते हैं। वैदिक परिकल्पनानुसार सृष्टिकाल से दृश्य जगत तक भौतिक पदार्थ पांच अवस्थाओं में निष्क्रमण करते हैं। वैज्ञानिक दृष्टि में महा-अग्निकांड (बिग बैंग) के बाद की अवस्थाएं क्रमशः इस प्रकार हैं-

1. आपः (क्रियाशील) अवस्था-क्वांटम या क्वार्कसूप (शपतथ ब्राह्मण, 1/1/1)
2. बृहती आपः -प्लाज्मा अवस्था (ऋग्वेद, 10/12/7)
3. अपानपात-नाभिक अवस्था या कॉस्मिक मैटर (ऋग्वेद, 1/35/2)
4. अर्ध गर्भ: -परमाणु अवस्था (ऋग्वेद, 1/164/36)
5. पंचमहाभूतों (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश) का दृश्य जगत्।[13,14]

इसी प्रकार ब्राह्मण ग्रंथों एवं उपनिषदों में –तैत्तिरीय ब्राह्मण (2, 8, 9, 6 तथा 1, 1, 3, 1), गोपथ ब्राह्मण (1, 1, 1, 2), सामविधान ब्राह्मण 1/1), जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण (7, 1, 1), शतपथ ब्राह्मण (6, 1, 1, 13, 19, 2, 2, 3, 28), जैमिनीय ब्राह्मण (1, 68 तथा 2, 146, ऐतरेय ब्राह्मण (5, 5, 7), ताड्य ब्राह्मण (4,1, 1), तैत्तिरीय संहिता (4, 1, 8, 3), ऐतरेये उपनिषद् (1, 1), तैत्तिरीय उपनिषद् (2, 7, 10) आदि में भी सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन है, जो वेदों की विषद् व्याख्या रूप हैं और उन अर्थों का पूरक भी है। इसी क्रम में दार्शनिकों एवं वेदांत ने भी उसी प्रकार चिंतन किया है। पौराणिक दृष्टि तथा मनु का सृष्टि सिद्धांत व आयुर्वेद का चिंतन भी वैदिक विज्ञान का समर्थन करता हुआ ही प्रतीत होता है।

वस्तुतः सृष्टि की उत्पत्ति और जगत् का विकास ही पर्यावरण प्रादुर्भाव है। सृष्टि का जो प्रयोजन है वही पर्यावरण का भी है। जीवन और

ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print): 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed Journal)

Website: www.ijirset.com

Vol. 6, Issue 7, July 2017

पर्यावरण का अन्योन्य संबंध है। इसीलिए आदिकाल से मानव पर्यावरण के प्रति जागरूक रहा है, ताकि मानव दीर्घायुष्व, सुस्वास्थ्य, जीवन-शक्ति, पशु, कीर्ति, धन एवं विज्ञान को उपलब्ध हो सके। यही कामना अथर्ववेद का ऋषि, 'आयुः प्राणं प्रजां पशुं' (अथर्ववेद, 19, 71, 1) व 'शत जीव शरदो' ...अथर्ववेद, 3, 11, 4) करता है और ऋग्वेद में ऋषि, 'शतां जीवंतु शरदः...' (ऋग्वेद 10/18/4) तथा यजुर्वेद में ऋषि, 'शतिमिन्नु शरदो अंति...' (यजुर्वेद, 25/22) तथा वह ऋषि का आशीर्वाद पाता है कि हे मनुष्य! बढ़ता हुआ तू सौ शरद ऋतु और सौ बसंत तक जीवित रहे। इंद्र (विद्युत), अग्नि, सविता (सूर्य), बृहस्पति (संकल्पशक्ति) और हवन (यज्ञ) तुझे सौ वर्ष तक आयुष्य प्रदान करें (अथर्ववेद)।

इतना ही नहीं कि किसी भी तरह सौ वर्ष जिएं, प्रत्युत, आरोग्यता और बल के साथ जिएं। हम सौ वर्ष पर्यंत, ज्ञानशक्ति का विकास करें, सौ वर्ष तक जीवन को ज्ञान के अनुकूल विकसित करें, सौ वर्ष तक वेद को सुनें और प्रवचन करें और आयु भर किसी के पराधीन न रहें (ऋग्वेद, 7/66/16)। संतान और धन के साथ अभ्युदय को हम प्राप्त होते हुए बाहर से शुद्ध, अंदर से पवित्र तथा निरंतर यज्ञ करने वाले हों। नृत्य, हास्य, सरलता और कल्याणमय श्रेष्ठ मार्ग के आचरण से आयु बढ़ती है (ऋग्वेद 10/18/2 तथा 10/18/3)। दीर्घायु प्राप्ति के लिए सर्वप्रथम अपने मन में श्रेष्ठ सद्‌गुण बढ़ाते हुए राष्ट्रीयता तथा क्षात्रतेज अपने अंदर बढ़ाना चाहिए। प्राणशक्ति के साथ आत्मिक बल धारण करने वाले मृत्यु के वश में नहीं जाते (अथर्ववेद 10/3/12 तथा 19/27/8)। इसलिए वेद की उपर्युक्त शाश्वत् भावना के अनुरूप ही पर्यावरण शुद्धि एवं सुस्वास्थ्य मानव की एक बड़ी आवश्यकता है।[15]

वैदिक साहित्य में प्राकृतिक पदार्थों से कल्याण की कामना को स्वस्ति कहा गया है। इस पर आचार्य सायण एवं नैरुक्त चिंतन है कि अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति योग है एवं प्राप्ति का संरक्षण क्षेम है (ऋग्वेद, 5/51/11)। अतएव सहज-सुलभ प्राकृतिक पदार्थों का सुरक्षित रहना स्वस्ति है। इस प्रकार पर्यावरण को सुरक्षित रखने की उदात्त भावनाएं हमें अनेक स्थलों पर देखने को मिलती हैं (ऋग्वेद, 5/51/11, 5/51/13, 5/51/14 तथा 10/7/1)।

पर्यावरणीय तत्वों में समन्वय होना ही सुख शांति का आधार है। दूसरे शब्दों में पदार्थों का परस्पर समन्वय ही शांति है। प्राकृतिक पदार्थों में शांति की भावनाएं अनेक स्थलों पर हमें उपलब्ध होती हैं। जैसे-पृथ्वी हमारे लिए कंटकरहित और उत्तम बसने योग्य हो (ऋग्वेद, 7/35/3 तथा यजुर्वेद 36/13)। हमारे दर्शन के लिए अंतरिक्ष शांतिप्रद हो (ऋग्वेद, 10/35/5)। वह आकाश जिसमें बहुत पदार्थ रखे जाते हैं, हमारे लिए सुख करने वाला हो (ऋग्वेद, 7/35/2)। सूर्य, अपने विस्तीर्ण तेज के साथ हमारे लिए सुख करने वाला हो (ऋग्वेद, 10/35/8)। सूर्य, हमारे लिए सुखकारी तपे (यजुर्वेद, 36/10), चंद्रमा हम लोगों के लिए सुखरूप हो (ऋग्वेद, 7/35/7)। नदी, समुद्र और जल हमारे लिए सुखप्रद हो (ऋग्वेद, 7/35/8)। पीने का जल और वर्षा का जल हमारे लिए कल्याणकारी हो (यजुर्वेद, 36/12)। जलधाराएं तुम्हारे लिए अमृत वस्तुएं बरसाएं (अथर्ववेद, 8/6/5)। ज्योतिर्मय अग्नि हम लोगों के लिए सुखरूप हो (ऋग्वेद, 7/35/4)। अग्नि दुःखदायक रोगादि को और अनावृष्टि आदि दुःखों का हनन करती है (सामवेद मंत्र-4)। इसी प्रकार अन्य पर्यावरणीय घटकों के लिए शुभकामनाएं की गई हैं। जैसे- शीघ्र चलने वाली वायु हम लोगों के लिए सब ओर से सुखरूप होकर बहे (ऋग्वेद, 7/35/4)। पवन हमारे लिए सुखकारी चले (यजुर्वेद, 36/10)। पूर्व आदि चारों दिशाएं व विदिशाएं हमारे लिए सुखरूप हों (ऋग्वेद, 7/35/8)। समस्त दिशाएं हमें मित्रवत सुख दें (अथर्ववेद, 19/15/16)। विशेष दीप्ति वाली उष्माएं हमारा कल्याण करें (ऋग्वेद 7/35/10)। दिन और रात्रि हमारे लिए सुखकारी हो (यजुर्वेद 36/11)। हम दिन और रात में अभय रहें (अथर्ववेद, 19/15/16)। मेघ हम प्रजाजनों के लिए शांतिप्रद हों (ऋग्वेद, 7/35/10)। बिजली और गरज के साथ शब्द करते हुए पर्जन्य (मेघ) देव की वर्षा कल्याणकारी हो (यजुर्वेद, 36/10), आज वैज्ञानिकों ने भी मौसम में बदलाव को नियंत्रित करने में बादलों की भूमिका को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है (टेक्सास ए एंड एम यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर शाइमा नसीरी, नवभारत, 4 जनवरी, 2011 के रायपुर संस्करण के पृष्ठ 5 पर)। उन्होंने शोध कर कहा कि मध्य स्तर के बादल छोटी बूंदों और बर्फ के कणों का निर्माण करते हैं। उन्होंने इस प्रकार के अध्ययन में नई सेटेलाइट टेक्नोलॉजी को वैज्ञानिक रहस्य उजागर करने में बहुत कारगर एवं सहयोगी बताया। नासा ने इस अध्ययन के लिए प्रो. शाइमी को न केवल सम्मानित किया, अपितु उन्हें भू-व्यवस्था का अध्ययन करने के लिए 3 लाख 24 हजार डॉलर का तीन वर्ष के लिए अनुदान भी दिया।

पर्यावरण के घटकों में समन्वय होना ही सुख, शांति व समृद्धि का आधार है। दूसरे शब्दों में कहें तो पदार्थों का परस्पर सामंजस्य ही शांति है। प्राकृतिक घटकों में सुख,शांति,वैभव व समृद्धि की भावनाएं अनेक स्थलों पर हमें उपलब्ध होती हैं। जैसे-पृथ्वी हमारे लिए कंटकहीन और उत्तम रहने योग्य हो (ऋग्वेद, 7/35/3 तथा यजुर्वेद 36/13)। हमारे दर्शन के लिए अंतरिक्ष शांतिप्रिय हो (ऋग्वेद, 10/35/5)। वह आकाश जिसमें बहुत पदार्थ रखे जाते हैं, हमारे लिए सुखगामी हो (ऋग्वेद, 7/35/2)। भास्कर अपने विस्तृत तेज के

ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print): 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed Journal)

Website: www.ijirset.com

Vol. 6, Issue 7, July 2017

साथ हमारे लिए सुख करने वाला हो (ऋग्वेद, 10/35/8)। सूर्य, हमारे लिए सुखकारी तपे (यजुर्वेद, 36/10), चंद्रमा हम लोगों के लिए सुखरूप हो (ऋग्वेद, 7/35/7)। नदी, समुद्र और जल हमारे लिए सुखगामी हो (ऋग्वेद, 7/35/8)। पीने का जल और वर्षा का जल हमारे लिए कल्याणकारी हो (यजुर्वेद, 36/12)। जलधाराएं तुम्हारे लिए अमृत वस्तुएं बरसाएं (अथर्ववेद, 8/6/5)। ज्योतिर्मय अग्नि हम लोगों के लिए सुखमयी हो (ऋग्वेद, 7/35/4)। अग्नि दुःखदायक रोगादि को और अनावृष्टि आदि दुःखों का शमन . [16]

इसी प्रकार पर्यावरण के विभिन्न घटकों के लिए शुभ आकांक्षाएं की गई हैं। जैसे- शीघ्र चलने वाली वायु हम लोगों के लिए सब ओर से सुखरूप होकर बहे (ऋग्वेद, 7/35/4)। पवन हमारे लिए सुखकारी चले (यजुर्वेद, 36/10)। पूर्व आदि चारों दिशाएं व विदिशाएं हमारे लिए सुखरूप हों (ऋग्वेद, 7/35/8)। समस्त दिशाएं हमें मित्रवत सुख दें (अथर्ववेद, 19/15/16)। विशेष दीप्ति वाली उष्माएं हमारा कल्याण करें (ऋग्वेद 7/35/10)। दिन और रात्रि हमारे लिए सुखकारी हो (यजुर्वेद 36/11)। हम दिन और रात में अभय रहें (अथर्ववेद, 19/15/16)। मेघ हम प्रजाजनों के लिए शांतिप्रद हों (ऋग्वेद, 7/35/10)। बिजली और गरज के साथ शब्द करते हुए पर्जन्य (मेघ) देव की वर्षा कल्याणकारी हो (यजुर्वेद, 36/10), आज वैज्ञानिकों ने भी मौसम में बदलाव को नियंत्रित करने में बादलों की भूमिका को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है (टेक्सास ए एंड एम यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर शाइमा नसीरी, नवभारत, 4 जनवरी, 2011 के रायपुर संस्करण के पृष्ठ 5 पर)। उन्होंने शोध में कहा है कि मध्यम स्तर के बादल छोटी – छोटी बूंदों और बर्फ के कणों का निर्माण करते हैं। उन्होंने इस प्रकार के अध्ययन में नई सेटेलाइट तकनीकी को वैज्ञानिक रहस्यों को उजागर करने में बहुत ही सुफलगामी एवं सहयोगी बताया।

पर्यावरण,प्रकृति व प्रगति के मध्य अन्तः सम्बन्ध है। जिनके प्रति मानवीय दृष्टिकोण सांस्कृतिक विरासत से विकसित होता है और इस सन्दर्भ में भारतीय संस्कृति की वैश्विक भूमिका प्राचीन काल से मानी गई हैं। पर्यावरण अध्ययन व पर्यावरण संरक्षण भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग रहे हैं। बाल्मीकि रचित रामायण से लेकर विश्वकवि तुलसीदास कृत श्री रामचरितमानस ग्रन्थ में पर्यावरण संरक्षण का विस्तृत उल्लेख मिलता है। यह तुलसीदास द्वारा रचित दोहे में स्पष्ट दिखाई पड़ता है –

"रीझि – खीझी गुरुदेव सिष सखा सुविहित साधू।
तोरि खाहु फल होई भलु तरु काटे अपराधू।।"
अर्थात
तुलसीदास ने वृक्ष से फल खाना तो उचित माना बस वृक्ष को काटना अपराध माना है।
त्रैतायुग में भी श्रीराम ने भी चौदह वर्ष का वनवास अपने सौभाग्य के कारण माना जो उनके प्रकृति प्रेम को इंगित करता है। तभी वो मर्यादा पुरुषोत्तम की पदवी को पाए। साथ ही साथ उन्होंनें वनवास अवधि के मध्य स्थानीय राजाओं के प्रलोभनों अर्थात रात्रि विश्राम के प्रस्तावों को ठुकराया और अपनी इस अवधि में प्रकृति की गोद में बैठना स्वीकार किया। [17]

विचार-विमर्श

इसी तारतम्य में वैदिक ऋषियों ने पर्वतों, वृक्षों, वनस्पतियों एवं पशुओं को प्रजाजनों के लिए सुख स्वरूप होने की कामना की है। उदाहरणार्थ-हमारी शांति के लिए पर्वत निश्चल हों (ऋग्वेद 7/35/3 एवं 8), वनों के वृक्ष हमारे लिए सुखरूप हों (ऋग्वेद, 7/35/5), हमारे लिए औषधियां शांतिकारक हों (यजुर्वेद, 36/17), घोड़े और गायें हम लोगों के लिए सुखरूप हों (ऋग्वेद, 7/35/12)। इस प्रकार पर्यावरण के हर घट के शांत एवं सौम्य रहने पर ही विश्व-शांति का स्वप्न साकार होने की कामना वैदिक ऋषियों ने की है। उन्होंने एक संपूर्ण वैचारिक जगत् के साथ-साथ सांस्कृतिक जगत् पर भी अत्यंत गहराई से विचार कर पर्यावरण के दायरे को विराटता प्रदान की है और प्राकृतिक आपदाओं से रक्षा की कामना के साथ-साथ माधुर्य की उदात्त भावना तथा अभय की प्रार्थना भी की है। जहां-जहां हमारे लिए जैसी परिस्थिति हों, वहां-वहां हमें हर प्रकार से अभय प्राप्त हो तथा प्रजा एवं पशुओं से भी हमें अभय मिले (यजुर्वेद, 37/12)। संसार में वायु मधुर होकर चले, नदियां मधुर होकर बहें, औषधियां मधुर उगें। रात मधुर हो प्रभात भी। पृथ्वी, द्यौ, वनस्पतियां, सूर्य और गौवें मधुर हों (यजुर्वेद, 13/27, 29)। हमें अंतरिक्ष अभय करे, द्यावा, पृथ्वी, नीचे-ऊपर, आगे-पीछे, मित्र-शत्रु, ज्ञात-अज्ञात, रात दिन और समस्त दिशाओं से अभय की प्राप्ति हो (अथर्ववेद, 19/15/5/6)।

पर्यावरण के संतुलन में वृक्षों के महान् योगदान एवं भूमिका को स्वीकार करते हुए मुनियों ने बृहत् चिंतन किया है। मत्स्य पुराण में उनके महत्व एवं महात्म्य को स्वीकार करते हुए कहा गया है कि दस कुओं के बराबर एक बावड़ी होती है, दस बावड़ियों के बराबर

ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print): 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed Journal)

Website: www.ijirset.com

Vol. 6, Issue 7, July 2017

एक तालाब, दस तालाबों के बराबर एक पुत्र है और दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष होता है-

दश कूप समा वापी, दशवापी समोहद्रः।
दशह्रद समः पुत्रो, दशपुत्रो समो द्रुमः।

प्राकृतिक शक्तियों में देवी स्वरूप की अवधारणा मात्र यह इंगित करती है कि हम इनकी रक्षा करें, इनसे अनुराग रखें और स्वस्थ, संतुलित जीवनयापन करते हुए पर्यावरण की यथाशक्ति रक्षा करें। उक्त बिंदुओं को यदि नैतिकता-अनैतिकता की सीमा-रेखा में न भी बांधें तो भी ये प्रकृति और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के संवाहक प्रतीत होते हैं। भारतीय चिंतन-धारा की यही प्रमुख विशेषता है, जो इस प्रदूषण-अभिशप्त सदी में हमें अपने अतीत की बार-बार याद दिलाती है।[18]

पर्यावरण प्रदूषण की आज अंतरराष्ट्रीय स्तर पर चर्चा जोर-शोर से होने लगी है, लेकिन इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि यह शब्द अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अचानक ही दो-चार दशक पूर्व प्रकट हो गया है। इसकी अवधारणा भले ही नई लगती हो, किंतु यह तो प्रकृति के प्रारंभ से ही विद्यमान रहा है, क्योंकि मानव द्वारा श्वास और मल-मूत्र तथा पसीना त्यागने के साथ-ही-साथ प्रदूषण आरंभ हो गया।

महर्षि यास्क ने अपने निरुक्त में वस्तु या भाव के जो छह विकार गिनाए हैं, उनमें पर्यावरण के संबंध में अस्ति या सत्ता शब्द चिंतनीय हैं। इसकी व्याख्या में वे कहते हैं कि कोई वस्तु तभी अपनी सत्ता बनाए रख सकती है।, जब वह स्वयं को धारण करने में समर्थ हो। जब उसमें बाहरी हस्तक्षेप अधिक होता है अथवा उसकी नैसर्गिक संरचना विकृत होती है तो उसकी आत्मधारणा शक्ति नष्ट हो जाती है, यही उसका प्रदूषण है। वस्तु के निर्माण का जो अनुपात है, वह स्थित रहना चाहिए। अनुपात भंग हुआ और वस्तु का स्वास्थ्य नष्ट हो गया। वस्तु के स्वास्थ्य का विनष्ट होना ही प्रदूषण है।

प्रकृति में एक का उच्छिष्ट दूसरे के लिए उपभोग्य बन जाता है। प्रकृति की संतुलन प्रक्रिया सृष्टि के आदिकाल से अनवरत एवं अविछिन्न रूप से चली आ रही है। यदि किसी कारण से इसमें कभी कोई व्यवधान पड़ता है तो पारिवेशिक संतुलन में प्रतिकूल स्थितियां दृष्टिगत होने लगती हैं। वस्तुतः प्रकृति में उत्पन्न होने वाली यही प्रतिकूलता प्रदूषण है। प्रदूषण के भाव को दर्शाने वाले कुछ शब्द हमें प्राचीन संस्कृत साहित्य में उपलब्ध होते हैं। जैसे-

'रपः' शब्द वैदिक वाङ्मय में कुछ स्थलों पर आया है, जिसे शारीरिक दोष या बुराई के अर्थ में माना गया है। ऋग्वेद में प्राचीन चिकित्सक अश्विनी कुमारों से प्रार्थना की गई है कि तुम हमारे दोषों को अच्छी प्रकार शोधन करो (ऋग्वेद, 1/34/11)। इसी प्रकार रुद्रदेव को देवकृत पाप का अपहरण करने वाला तथा किए हुए अपराध को क्षमा करने वाला या विनष्ट करने वाला बताया गया है (ऋग्वेद, 2/33/7 तथा 10/97/10)। औषधियों को भी शरीर के प्रदूषण को दूर करने वाली बताया गया है और अन्यत्र वायु से व्याधि दूर कर सूख प्रदान करने और दोषों को हटाने की कामना की गई है (ऋग्वेद, 10/137/10)।[19]

इसी प्रकार 'विष' शब्द का प्रयोग शारीरिक व प्राकृतिक प्रदूषण के रूप में किया गया है। ऋग्वेद के प्रथम मंडल के 191वें सूक्त के मंत्रों में विष शब्द अनेक बार प्रयुक्त हुआ है। ऋषि अगस्त्य ने विष की आशंका से युक्त होकर उसके निवारण के लिए इस सूक्त का प्रयोग किया है। इसके देवता जल, तृण और सूर्य हैं तथा इसमें मधुविद्या का वर्णन है। आचार्य सायण ने इसे विषरहित करने वाली मधुविद्या कहा है कि यह विषभाव को दूर कर अमृत बनाती है। उन्होंने इसके अल्प और महाविष- दो प्रकार लिखे हैं। इकाई अथवा सामूहिक रूप से इसका प्रयोग किया जा सकता है। विष के प्रभाव से खाद्य, पेय, भक्ष्य सामग्री तथा जल एवं वायु आदि विषाक्त हो जाते हैं। इस प्रकार सभी विष क्षोभक और श्वासरोधक होकर प्राणों का नाश करते हैं। प्राचीन युग के विष चिकित्सक अपने राजा की सेना एवं जनपद की रक्षा करने में समर्थ होते थे।

एक और शब्द 'पाप' भी प्रदूषण के पर्याय स्वरूप अथर्ववेद में आया है (अथर्ववेद, 10/1/10)। उपनिषदों में प्रदूषण का पर्याय 'पाप' शब्द आया है (महानारायणोपनिषद्, 4/6)। यहां मिट्टी से दोष हरने की प्रार्थना है। अन्यत्र तिल को भी पापनाशक माना है। कहीं-कहीं 'मल' शब्द भी प्रदूषक वाचक माना गया है (अथर्ववेद, 6/115/3) इसमें स्नान करने से जैसे दैहिक मल दूर होता है, वैसे ही पवित्र आचरण व व्यवहार से सभी लोग प्रदूषण से बचने के लिए प्रयत्नशील हों। इसी प्रकार ऋग्वेद में पापों और हिंसकों के आने के पूर्व ही उनसे बचने के लिए प्रयत्न करने को कहा गया है (ऋग्वेद, 8/44/30 तथा 10/113/10)। इसके लिए यहां 'दुरित' शब्द का प्रयोग हुआ है। कुछ स्थलों पर 'अहः' शब्द भी पर्यावरण के लिए प्रयुक्त हुआ है (ऋग्वेद, 1/106/10)। इसमें यह प्रार्थना है कि हमसे सभी दोषों

ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print): 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed Journal)

Website: www.ijirset.com

Vol. 6, Issue 7, July 2017

को दूर कर दें। अथर्ववेद 4/27/1 से 7/11/6 तथा 6/8 एवं 10/21) के अनेक मंत्रों में मरुत देवों से पाप एवं दोषों को छुड़ाने की बार-बार प्रार्थना की गई है। वेद में एक और शब्द 'एनः' उन्हीं अर्थों में आया है, जिनमें अहं: या अध शब्द आए हैं। यजुर्वेद के कई मंत्रों में – अग्नि, वायु और सूर्य द्वारा दिन-रात, स्वप्न अथवा जागते हुए पाप अथवा प्रदूषण से छूटने की कामना की गई है (यजुर्वेद, 20/14 से 16)।[20]

प्रदूषण निवारण के लिए ऋग्वेद (मंडल 7, सूक्त 50) में विभिन्न पदार्थों से विष आदि हरण की कामनाएं की गई हैं। आचार्य सायण ने 'विषादिहरणे विनियोग' लिखकर ही इस सूक्त का भाष्य किया है। प्रथम मंत्र में मित्र वरुण देवताओं से प्रार्थना की गई है कि विशेष रूप से बढ़े हुए विष से बचाते हुए हमारे पालना करें। 'अजका' नामक रोग की तरह यह अनिष्टकारी विष समाप्त हो, जिससे हम लोग प्रदूषण के पाप से पीड़ित न हों। दूसरे मंत्र में कहा गया है कि वृक्षों की गांठ में अथवा शरीर के विभिन्न भागों में जो विष है, उसे प्रदीप्त अग्नि हमसे दूर करे। तीसरे मंत्र में, जो प्राण हरने वाला पदार्थ विष सेमर आदि वृक्षों में तथा जो नदियों के प्रवाह में होता है और जो विष, यव आदि औषधियों से उत्पन्न होता है, उस विष को विद्वान् निरंतर दूर करें, ताकि उस पापाचरण प्रदूषण से उत्पन्न होने वाले रोग हमें प्राप्त न हों।

ऋग्वेद (7/104/9) में चेतावनी दी गई है कि जो कल्याणकारक पदार्थों अथवा वचनों को अपनी क्रियाओं से दूषित करते हैं, वे राक्षस दुःख सागर में गोते खाते हैं। इस प्रकार भौतिक एवं वैचारिक प्रदूषण के प्रति भी ऋषियों ने अपनी चिंता प्रकट की है। ऋग्वेद (10/137/5) के इस मंत्र में, देवगणों से प्रदूषण आदि दोषों से हमारे शरीर की रक्षा करने की कामना की गई है। इस लोक में सारी दिव्य शक्तियां सबकी रक्षा करें, मरुतों का समूह सबकी रक्षा करे, समस्त उत्पन्न पदार्थ हमारी रक्षा करें, जिससे हमारे शरीर आदि निर्दोष रहें। इसी प्रकार अथर्ववेद (8/2/19) में भी प्रदूषण मुक्ति की कामना उपलब्ध है, 'हे मनुष्य! जो तू खेती का उपजा धान्य खाता है और जो तू दूध व जल पीता है, चाहे वह नया हो या पुराना, वह सब अन्नादि तेरे लिए विष रहित हों।'[21]

द्वापर युग में तो भगवान श्री वासुदेव का बाल्यकाल प्रकृति की गोद में बीता। उन्होंनें तो पग – पग पर पर्यावरण संरक्षण के संकेत दिए। उनका बचपन का काल खण्ड कदम्ब का वृक्ष,यमुना,धेनु व लताओं को केन्द्र में रहकर गुजरा।जो कहीं न कहीं भारतीय चिन्तन का केन्द्र बन गया। आगामी युग पूर्व मध्यकाल के कृष्ण भक्त कवियों ने राधा-कृष्ण के सौन्दर्य चित्रण के साथ-साथ प्रकृति व पर्यावरण की रूपरेखा को जोड़ा जिससे माधुर्यता का समावेश सौन्दर्य में हो गया।काव्य की माधुर्यता व सौष्ठवता प्रकृति चित्रण के बिना अकल्पनीय है। परवर्ती साहित्य तक कृष्ण भक्ति काव्य का प्रभाव परिलक्षित होता है। जो आज भी हमें कवि व साहित्यकारों के साहित्य में दिखाई देता है। कृष्ण कवियो के इस प्रकृति चित्रण ने पर्यावरण संरक्षण की नींव रखी। उनके काव्य में वर्णित काव्य पंक्तियों में प्रकृति उल्लेख से प्रभावित होकर सामान्य जन ने पर्यावरण के महत्व को समझा। एक कृष्ण भक्त कवि की पंक्ति में यह स्पष्ट होता है –

"तब ये लगति अति सीतल।
अब भई विषम ज्वाल की पुँजें।।"
अर्थात
कवि को वृक्षों की लताएँ बहुत ही सुन्दर व शीतल लगती हैं।
५५० ई०पू० के लगभग महाराज सिद्धार्थ के पुत्र वर्धमान ने भी प्रकृति को ईश्वर का साकार प्रतिबिम्ब माना।उन्होंनें कहा है कि प्रकृति बिना किसी स्वार्थ व भेदभाव के सृष्टि के समस्त प्राणियों की जीवकोपार्जन व सभी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। ये वर्धमान ही अपने इस प्रकृति प्रेम व प्रकृति के प्रति वचनवद्धता के कारण महावीर स्वामी बनें। इन्होनें अपने मत जैन मत की पूजा पद्धति में पवित्र साल वृक्ष को जोड़ा और महावीर स्वामी बनकर जैन मत के मूल भूत सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया। जैन धर्म में साल वृक्ष को ज्ञान प्राप्ति का प्रतीक माना जाता है।
६००ई०पू० के लगभग महाराज शुद्धोधन के पुत्र सिद्धार्थ को जब वास्तविक जीवन का बोध हुआ तो ये ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिए निकल पड़े। लेकिन इन्होनें आश्रय एक वृक्ष के ही नीचे लिया और यहीं से इन्हें ज्ञान की प्राप्ति हुई। बाद में यही सिद्धार्थ बौद्ध धर्म के संस्थापक गौतम बुद्ध बने।अपितु यह वृक्ष आगे चलकर ज्ञान का प्रतीक समझा जाने लगा। वह वृक्ष पीपल वृक्ष था जिसे बोधिवृक्ष भी कहा जाता है। इस वृक्ष की बुद्ध दर्शन में बड़ी मान्यता है। बुद्ध मत में न केवल इसकी आस्थात्मक व भावात्मक मान्यता है बल्कि इसका वैज्ञानिक व तार्किक महत्व भी अभिव्यिक्त किया गया है। इस प्रकार विभिन्न मत-मतान्तर में होने वाली वृक्षों की आध्यात्मिक व्याख्या पर्यावरण के लिए लाभदायी सिद्ध हुई। कालान्तर में बौद्ध मतावलम्बियों नें पर्यावरण संरक्षण का वीणा उठाया व इसके लिए

ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print): 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed Journal)

Website: www.ijirset.com

Vol. 6, Issue 7, July 2017

सभी को प्रेरित भी किया।भारत की रज में पल्लवित हुए विभिन्न मतों में प्रकृति प्रेम स्वाभाविक समाया हुआ है। जो अपने – अपने मतावलम्बियों को पर्यावरण संरक्षण के लिए प्रेरित करता है।[22]

भारतीय संस्कृति का एक-एक पर्व पर्यावरण संरक्षण व प्रकृति प्रेम की ओर संकेत करता है। चाहे वो रक्षाबन्धन हो या मकर संक्रांति या हरियाली तीज हो। जैसे – एक उत्तर भारत का प्रसिद्ध लोक पर्व 'वट अमावस्या' है। जिसमें सुहागिन माताएँ वट वृक्ष की आराधना व पूजन करती हैं। तथापि इसका अध्यात्मिक आधार तो यह है कि अपने पति की आयु को माँगना अर्थात दीर्घायु की कामना करना। परन्तु इसका मौलिक व भारतीय चिन्तन तो कुछ और है। वट पूजन से हमारी माताएँ यह आस्थावादी संकेत सम्पूर्ण जगत को देती है कि इस वृक्ष के पूजन से पति परमेश्वर की दीर्घायु मिलेगी इसलिये वृक्षोन्मूलन मत करो।इसका पौराणिक महत्व है। यही कारण है कि भारतीय चिन्तन के प्रमुख केन्द्र प्रकृति व पर्यावरण रहे हैं।

पर्यावरण के संतुलन करने में में वृक्षों के अद्‌भुत व प्रमुख योगदान एवं भूमिका को स्वीकार करते हुए ऋषियों ने बृहत् चिंतन व विचार विमर्श किया है। मत्स्य पुराण में उनके महात्म्य को स्वीकार करके ऋषियों द्वारा कहा गया है कि दस कुओं के बराबर एक बावड़ी होती है, दस बावड़ियों के बराबर एक तालाब, दस तालाबों के बराबर एक पुत्र है और दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष होता है-

"दश कूप समा वापी, दशवापी समोहद्रः।
दशहृद समः पुत्रो, दशपुत्रो समो द्रुमः।" – मत्स्य पुराण(विष्णु के दस अवतारो के लिए प्रसिद्ध)

प्राकृतिक घटकों में ईश्वर के साकार स्वरूप की अवधारणा मात्र इस ओर संकेत करती है कि हम इनकी रक्षा करें, इनसे स्नेह रखें और स्वस्थ,सुव्यवस्थित जीवनयापन करते हुए पर्यावरण की यथाशक्ति रक्षा करें। उक्त बिंदुओं को यदि हम नैतिकता-अनैतिकता के बन्धन में न भी बांधें तो भी ये प्रकृति और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के संवाहक से प्रतीत होते हैं।

परिणाम

सृष्टि की विनाश प्रक्रिया पर विचार करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि विनाश का मूल कारण प्रदूषण ही है, क्योंकि व्यक्त पदार्थों के गुणों में विकार उत्पन्न होने पर, उनके विनष्ट होने की प्रक्रिया प्रारंभ होती है। इसे ही वेदों में प्रतिसर्ग अथवा सर्ग कहा गया है। उक्त विकार को ही आधुनिक भाषा में प्रदूषण कहते हैं। वेदों को व्याख्यायित करते हुए वायुपुराण (62/15) में महर्षि वेदव्यास ने अपनी चिंता प्रकट करते हुए कहा है कि इस सृष्टि के अपने स्वरूप में अधिष्ठित हो जाने पर इसका अंधाधुंध दोहन न किया जाए, क्योंकि मनुष्यों के क्रियाकलापों तथा अतिशय भोगवादिता के कारण प्राकृत पदार्थों में समय पूर्व वे दोष उत्पन्न हो जाते हैं, जो कल्प के अंत में आने वाली प्रलय में उत्पन्न होते हैं, जिससे यह दृश्य प्रकृति लय की ओर अग्रसर हो दुःखद हो जाता है। ऋग्वेद (10/86/5) का ऋषि भी इसी प्रकार चिंता करते हुए कहता है कि पर्यावरण प्रदूषण द्वारा बनाए हुए व्यक्त पदार्थों को, जब मनुष्य अपनी अतिशय भोगतृष्णा से दूषित करता है, तब यह प्रकृति उसके सिर को झुका देती है। ऐसे विनाश की ओर जाने वाला विश्व के लिए यह प्रकृति सुज्ञेय एवं सुखकारी नहीं होती।[20]

प्रदूषण के कारण अत्यधिक ताप बढ़ जाने से सूर्यादि ग्रह क्रूर हो जाते हैं और सर्य की किरणें उग्र होकर स्थावर, जंगल, नदी, पर्वत, वनस्पति आदि तीनों लोकों को जलाने लगती हैं (महाभारत, भिष्म पर्व, 77/11 तथा वायु पुराण, 7/41-42।) इसी प्रकार मत्स्य पुराण में भी कहा गया है कि प्रचंड सूर्य अपनी किरणों से समुद्रों को शोषित कर संपूर्ण नदी, कूप एवं पर्वतों के झरनों के जल को भी सूखा देता है और अंत में वह अपनी प्रलयकालीन किरणों द्वारा पृथ्वी का भेदन करता हुआ, पाताल के जल को भी अर्थात् भूगर्भ के जल को भी खींच लेता है (मत्स्यपुराण, 165/1-3)। इससे भूगर्भीय जल का स्तर निरंतर नीचे गिरने लगता है, जिससे कुएं और नलकूप असफल होने लगते हैं और चारों ओर विशेष रूप से ग्रीष्म ऋतु में पानी के जल का भीषण संकट ग्राम और नगर सब ओर दिखाई देने लगता है। इस भीषण अग्नि से, वन आदि जलने लगते हैं। मत्स्य पुराण (165/11/1) में इसी प्रलयकालीन संवर्तक अग्नि के विनाशक रूप का वर्णन किया गया है।

इसी प्रकार अधिक ताप उत्पन्न होने के कारण भयानक आंधियां चलने लगती हैं और प्रकुपित वायु के प्रकोप से विनाशकारी मेघ, सूर्य, अग्नि और आंधियों की उत्पत्ति होती है (महाभारत, शल्य पर्व, 66/6)। यह प्रकुपित वायु समुद्रों को भी सुखा देती हैं, जिससे भीषण जल-संकट उत्पन्न हो जाता है। अधिक ताप उत्पन्न होने के फलस्वरूप वृष्टि (वर्षा) असंभव हो जाती है और अनावृष्टि से चारों ओर हाहाकार मचने लगता है। यही संकेत ब्रह्मपुराण (231/14) में भी किया गया है। इस प्रकार बढ़े हुए ताप को ही 'कालाग्नि' के नाम से

ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print): 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed Journal)

Website: www.ijirset.com

Vol. 6, Issue 7, July 2017

अभिहित किया गया है और उसके द्वारा विदग्ध हुई भूमि का भयावह चित्रण करते हुए महाभारत (शांतिपर्व, 293/4) में कहा गया है कि इससे समस्त स्थावर-जंगल प्राणियों के नष्ट होने का संकट उत्पन्न हो जाता है और अंत में समुद्रों का जल सूख जाने के कारण इस भूमि के जल और तृण आदि से रहित होने पर कछुए की पीठ की तरह स्वरूप होने की संभावना प्रबल हो जाती है। इस प्रकार अत्यधिक ताप और भयानक आंधियों के पश्चात उनसे भी अधिक भयंकर घने मेघ आकाश में उत्पन्न होते हैं और घनघोर वर्षा द्वारा इस संसार के जल-प्लावित होने का भय उत्पन्न हो जाता है, जिससे इस सृष्टि के डूबकर नष्ट होने की संभावनाएं प्रबल हो जाती हैं (मत्स्यपुराण, 165/15)। ब्रह्मपुराम (232/14-19) में इसी प्रकृति-प्रलय की संभावनाओं को प्रदर्शित करते शार्दूल-मुनि ने पर्यावरण रक्षा के लिए विश्व को सचेत रहने का उपदेश किया है और भौतिक पर्यावरण में इनकी रक्षा का उपाय बताते हुए, इनके स्थान क्रम को इस प्रकार परिगणित किया है- 1. पृथ्वी मंडल, 2. जल मंडल, 3. तेजो मंडल, 4. वायु मंडल और 5. आकाश मंडल। [21]

निष्कर्ष

ऋग्वेद में भूमि संरक्षण संबंधी विभिन्न विचार उपलब्ध हैं। उनमें ऋषि द्वारा विद्वानों को सत्य लक्षणों से युक्त ज्ञान से प्रकाशित मंत्रों से भूमि को धारण करने का निर्देश दिया गया है (ऋग्वेद, 1/67/3)। उनमें राजा को आदेश दिया गया है कि वह धन, औषधि, जल आदि को धारण करने वाली पृथ्वी की सुरक्षा करें (ऋग्वेद, 3/51/5 तथा 3/55/22)। यजुर्वेद में यह कामना करते हुए संदेश दिया गया है कि भूमि को अपने दुष्कर्मों से न बिगाड़ें, उसको प्रदूषित करना उसके प्रति हिंसा है। भूमि की हिंसा हम और हिंसा हमारी भूमि न करे (यजुर्वेद, 10/23)। अथर्ववेद में ऋषि कहते हैं कि सबका पालन करने वाली भूमि की उपजाऊ शक्ति को नष्ट न होने दें। हे भूमि, हम तेरी खुदाई करें, वह शीघ्र भर जाए, हम तेरी हिंसा न करें (अथर्ववेद, 12/1/34-35)। भूमिसूक्त के ऋषि प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि यज्ञ भूमि में देवताओं के लिए हम अंलकृत हव्य प्रदान करें। उसी भूमि में मरणशील मनुष्य स्वधा और अन्न से जीवन धारण करते हैं। वह भूमि हमें वृद्धावस्था तक प्राणप्रद वायु प्रदान करे। पृथ्वी की गोद हमारे लिए निरोग और सब रोग से रहित हो। दीर्घकाल तक जागते हुए हम अपने जीवन को इसकी सेवा में लगाएं (अथर्ववेद, 12/1/22 तथा 12/1/62)।

भूमिसूक्त का ऋषि हमें बताता है कि निवास योग्य तथा विभिन्न कार्यों में प्रयोग होने वाली भूमि का संरक्षण करने से वह सुखद होती है। हे भूमि, तुम्हारी पहाड़ियां, हिमाच्छादित पर्वत, वन, पुष्टि देने वाली भूरे रंग की मिट्टी, कृषि-योग्य काली मिट्टी, उपजाऊ लाल रंग की मिट्टी अनेक रूपों वाली, सबका आश्रय स्थान, स्थिर भूमि पर अजेय, अवध्य और अक्षत रहकर हम निवास करें (अथर्ववेद, 12/1/11)। वेदों में मनुष्य को समृद्ध बनाने वाली उर्वरा भूमि के लिए कृषकों एवं वैज्ञानिकों की प्रेरणा दी गई है कि वे उसकी उर्वरा-शक्ति बनाए रखने के लिए पर्यावरण-प्रदूषित करने वाले खाद के स्थान पर, गोबर-खाद प्रयुक्त खेती को ही उत्तम फलवती मानकर, मधुर अन्न उत्पन्न करने वाले खाद के स्थान पर उन्नत करें। बार-बार बुआई से भूमि की उर्वरा शक्ति नष्ट होने की ओर संकेत किया गया है कि सब कुछ देने वाली जिस विस्तृत पृथ्वी की जागरूक, विविध व्यवहारों में कुशल विद्वान प्रजाजन प्रमादरहित होकर रक्षा करते हैं, उस भूमि को हम प्रिय मधु दिया करें तथा हम उसके तेज को बढ़ाएं (अथर्ववेद, 19/31/2 तथा 12/17)। वेदों में सर्वप्रथम भूमि संस्कारवान बनाने के लिए कहा गया है। भूमि और अन्न को प्रदूषणरहित रखने के लिए मलिन अथवा विषयुक्त खाद डालकर उसे बिगाड़ने के प्रति निषेध किया गया है। यजुर्वेद में हल बैलों द्वारा खेतों को जोतकर, उत्तम अन्नों के बीज बोने का निर्देश दिया गया है। खेतों में गोबर-खाद डालें और विष्ठा आदि मलिन पदार्थ न डालने के लिए कहा गया है। बीजों को सुगंध आदि से उपचारित करके बोएं ताकि अन्न भी रोगरहित होकर मनुष्य की बुद्धि को बढ़ाए। वहां निर्देश दिया गया है कि खेतों को घी, मीठा, और जल आदि से संस्कारित करें। यहां मीठा का अर्थ शहद या शक्कर से लिया गया है। प्रदूषणरहित कृषि ही राष्ट्र निवासियों को बलवान बनाती है। इसलिए राजा को भी आदेश दिया गया है कि राजा हमारे लिए ऐसी खेती को सदैव बढ़ावा दें, उसे प्रोत्साहित करें। मनुष्यों में तेज और बल बढ़ने से ही उत्तम राष्ट्र उन्नतिशील होता है और यह संभव होता है प्रदूषणरहित कृषि अपनाने से (ऋग्वेद, 10/101/3, 4 तथा यजुर्वेद 4/10, 12/69/70, 23/46 एवं अथर्ववेद 8/10/12 व 3/12/4)। भूमि प्रदूषण निवारण हेतु अनेक उपाय वैदिक साहित्य में उपलब्ध हैं। उन उपायों में यज्ञ महत्वपूर्ण है, जिससे पृथ्वी सस्यादि से पुष्ट होकर सुख देने वाली बनती है। वैदिक ऋषि कहते हैं कि विस्तृत द्युलोक तथा भूमि हमारे इस यज्ञ का सेवन करे और वे यज्ञ से पोषण प्राप्त कर, हमारे भरण-पोषण करें। क्योंकि यजमान द्वारा अनुष्ठीयमान यज्ञ वर्षाकारक इंद्र की शक्ति को बढ़ाता है और भू-लोक को विविध अनाज आदि से पुष्ट करता है (ऋग्वेद 1/22/13 तथा 8/14/5)।[22]

संदर्भ

ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print): 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed Journal)

Website: www.ijirset.com

Vol. 6, Issue 7, July 2017

1. पृथ्वी (तैत्तिरीय संहिता, 2/1/2/3, निरुक्त, 1/4/5, ऋग्वेद सायण भाष्य, 5/85/1 और अमरकोश, रामाश्रमी : टीका, पृ. 141) के विस्तार के कारण पृथ्वी है।

2. गौः (निरुक्त 2/2/5) गति के कारण गौ है।
3. भूमि (रामाश्रमी टीका, अमरकोष पृ. 141) निवास योग्य होने के कारण भूमि है।
4. वसुंधरा (वही, पृ. 141 रत्न आदि धनों से युक्त होने के कारण।5. मही (वही, पृ. 141) पूजनीय एवं इसमें प्राणियों के बड़े होने के कारण।
6. धरा (वही, पृ. 141) धारण करने के कारण।
7. धरणी (वही, पृ. 141) धारण करने के कारण।
8. अवनी (वही, पृ. 141) प्राणियों की रक्षा एवं पालन करने के कारण।
9. मेदिनी (वही, पृ. 141) समस्त प्राणियों से स्नेह होने के कारण।
10 स्थिरा (वही, पृ. 141) अपने स्थान पर स्थित रहने के कारण।
11. विश्वंभरा (वही, पृ. 141) सबका भरण-पोषण होने के कारण।
12. रसा (वही, पृ. 141) रस से परिपूर्ण होने के कारण।
13. क्षमा (वही, पृ. 141) क्षमाशील होने के कारण।
14. गोत्रा (वही, पृ. 142) सहनशील होने के कारण।
15. सर्वसहा (वही, पृ. 142) सब कुछ सहने के योग्य होने के कारण।
16. अचल (वही, पृ. 142) स्थित होने के कारण।
17. अनंता (वही, पृ. 142) अंतिम छोर न होने के कारण।

18.रत्नगर्भा भूमि (अथर्ववेद 12/1/26 तथा गोपथ ब्राह्मण, 2/2/7)।
19. अग्निगर्भा पृथ्वी (अथर्ववेद, 12/1/21, शतपथ, 14/9/4/21 तथा जैमनीय ब्राह्मण, 3/186)।
20. परिमंडल पृथ्वी (शतपथ ब्राह्मण, 7/1/1/37 व जैमिनीय ब्राह्मण, 1/2/5/7)।
21. हरित भूमि (ऋग्वेद 5/84/3, 6/47/27, 7/34/23 व मैत्रायणी संहिता
22. गंधवती पृथ्वी (अथर्ववेद, 12/1/23-25 तथा शतपथ ब्राह्मण, 9/4/1/8, 10)।